

205

आ३म्

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

अर्थात्

श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी

महाराज का

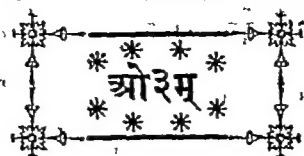
मुख्य सिद्धान्त

अजमेर नगरे

वैदिक यन्त्रालये मुद्रितः

सन् १९०७

तृतीयवार २०००



स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः ॥

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिस को सदा से सब मानते आये, मानते है और मानेंगे भी इसीलिये उस को सनातन नित्य धर्म कहते है कि जिस का विरोधी कोई भी न हो सके, यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मतवाले के अ-माये हुए जन जिस को अन्यथा जानें वा मानें उस का स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते किन्तु जिस को आस अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक पक्षपात-रहित विद्वान् मानते हैं वही सब को मन्तव्य और जिस को नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता । अब जो वेदादिसत्यशास्त्र और ब्रह्मों से लेकर जैमिनिमुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ है जिनको कि मैं भी मानता हूं सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूं । मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सब को एकसा मानने योग्य है । मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उस को छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है । यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो २ आर्यावर्त्त वा अन्यदेशों में अधर्मयुक्त चाल चलन है उन का स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उन का त्याग नहीं करता न करना चाहता हूं क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहिः है । मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यो के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से ध-

मात्माओं कि चाहे वे महाअनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों उन की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथैपि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहांतक हो सके वहांतक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे, इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे, इसमें श्रीमान् महाराजा भर्तृहरिजी आदि ने श्लोक कहे हैं उनका लिखना उपयुक्त समझ कर लिखता हूं—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा, यदि वा रतुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥ भर्तृहरिः ॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।

धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥२॥ महाभारते ॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।

शरीरेणा समं नाशं सर्वमन्यद्वि गच्छति ॥३॥ मनुः ॥

सत्प्रमेव जयते नानृतं सत्येन पन्थाविततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्रतत्सत्यस्य परमं नि
धानम् ॥ ४ ॥

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् । नहि
सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥५॥ उ० नि० ॥

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल सब को निश्चय रखना योग्य है ।
अब मैं जिन २ पदार्थों को जैसा २ मानता हूं उन २ का वर्णन संक्षेप से यहां करता हूं
कि जिनका विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थ में अपने २ प्रकरण में कर दिया है इनमें से—

१—प्रथम “ईश्वर” कि जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम है, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र है, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूँ ॥

२—चारों “वेदों” (विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निःश्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूँ, वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिनके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं, जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं और चारों वेदों के ब्राह्मण, ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारहसौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूँ ॥

३—जो पक्षपातरहित, न्यायाचरण सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको “धर्म” और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञा-भंग वेदविरुद्ध है उसको “अधर्म” मानता हूँ ॥

४—जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसीको “जीव” मानता हूँ ॥

५—जीव और ईश्वरस्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न है अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य व्यापक, उपास्य उपासक और पिता पुत्र आदि सम्बन्ध युक्त मानता हूँ ॥

६—“अनादि पदार्थ” तीन हैं एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण इन्हीं को नित्य भी कहते हैं, जो नित्य पदार्थ है उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य है ॥

७—“प्रवाह से अनादि” जो संयोग से द्रव्य गुण कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूँ ॥

८—“सृष्टि” उस को कहते हैं जो पृथक्-द्रव्यों का ज्ञान-युक्तिपूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना ॥

९—“सृष्टि का प्रयोजन” यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टि-निमित्त गुण कर्म स्वभाव का साफल्य होना । जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किसलिये है ? उस ने कहा देखने के लिये । वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि भी ॥

१०—“सृष्टि सकर्तृक” है इस का कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का “कर्त्ता” अवश्य है ॥

११—“बन्ध” सानिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्त से है । जो २ पापकर्म ईश्वर भिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख फल करनेवाले हैं इसीलिये यह “बन्ध” है कि जिस की इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है ॥

१२—“मुक्ति” अर्थात् सर्व दुःखों से छूटकर बन्धरहित सर्व व्यापक ईश्वर और उस की सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना ॥

१३—“मुक्ति के साधन” ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य्य से विद्या प्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं ॥

१४—“अर्थ” वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अधर्म से सिद्ध होता है उस को अनर्थ कहते हैं ॥

१५—“काम” वह है कि जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय ॥

१६—“वर्णाश्रम” गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूँ ॥

१७—“राजा” उसी को कहते हैं जो शुभगुण कर्म स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित, न्यायधर्म का सेवी, प्रजाओं में पितृवत् वर्त्ते और उन को पुत्रवत् मान के उन की उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे ॥

१८—“प्रजा” उस को कहते हैं कि जो पवित्रगुण कर्म स्वभाव को धारण करके पक्षपातरहित न्याय धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते ॥

१९—जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे, अन्याय-

कारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे अपने आत्मा के समान सब का सुख चाहे सो "न्यायकारी" है उस को मैं भी ठीक मानता हूँ ॥

२०—“देव” विद्वानों को और अविद्वानों को “असुर” ; पापियों को “राक्षस”, अनाचारियों को “पिशाच” मानता हूँ ॥

२१—उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि, न्यायकारी, राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का संस्कार करना “देवपूजा” कहाती है, इससे विपरीत अदेवपूजा, इन की मूर्तियों को पूज्य आर इतर पाषाणादि जड़ मूर्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूँ ॥

२२—“शिद्दा” जिस से विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उस को शिद्दा कहते हैं ॥

२३—“पुराण” जो ब्रह्मादि के बताये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूँ अन्य भागवतादि को नहीं ॥

२४—“तीर्थ” जिस से दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि, योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म है उन्हीं को तीर्थ समझता हूँ इतर जलस्थलादि को नहीं ॥

२५—“पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा” इसलिये है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिस के बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं इसीसे प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है ॥

२६—“मनुष्य” को सब से यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि, लाभ में वर्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्तना बुरा समझता हूँ ॥

२७—“संस्कार” उस को कहते हैं कि जिस से शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवें वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है इस को कर्त्तव्य समझता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये ॥

२८—“यज्ञ” उस को कहते हैं कि जिस में विद्वानों का संस्कार यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थविद्या उस से उपयोग और विद्यादि शुभगुणों का दान अग्निहोत्रादि जिन से वायु, वृष्टि, जल, ओषधी की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उस को उत्तम समझता हूँ ॥

२६—जैसे “आर्य्य” श्रेष्ठ और “दस्यु” दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूँ ॥

३०—“आर्य्यावर्त्त” देश इस भूमि का नाम इसलिये है कि इस में आदि सृष्टि से आर्य्य लोग निवास करते हैं परन्तु इस की अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्रा नदी है, इन चारों के बीच में जितना देश है उस को “आर्य्यावर्त्त” कहते और जो इन में सदा रहते हैं उन को भी आर्य्य कहते हैं ॥

३१—जो साङ्गोपाङ्ग वेदविद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्या-चार का त्याग करावे वह “आचार्य्य” कहाता है ॥

३२—“शिष्य” उस को कहते हैं कि जो सत्यशिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्या ग्रहण की इच्छा और आचार्य्य का प्रिय करनेवाला है ॥

३३—“गुरु” माता पिता और जो सत्य का ग्रहण करावें और असत्य को छुड़ावें वह भी “गुरु” कहाता है ॥

३४—“पुरोहित” जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवै ॥

३५—“उपाध्याय” जो वेदों का एकदेश वा अङ्गों को पढ़ाता हो ॥

३६—“शिष्टाचार” जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य्य से विद्याग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना है यही शिष्टाचार और जो इस को करता है वह शिष्ट कहाता है ॥

३७—प्रत्यक्षादि “आठ प्रमाणों” को भी मानता हूँ ॥

३८—“आप्त” जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सब के सुख के लिये प्रयत्न करता है उसी को “आप्त” कहता हूँ ॥

३९—“परीक्षा” पांच प्रकार की है इस में से प्रथम जो ईश्वर उस के गुण कर्म स्वभाव और वेदविद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टिक्रम, चौथी आसों का व्यवहार और पांचवीं अपने आत्मा की पवित्रता विद्या इन पांच परीक्षाओं से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिये ॥

४०—“परोपकार” जिस से सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़े उस के करने को परोपकार कहता हूँ ॥

४१—“स्वतन्त्र” “परतन्त्र” जीव अपने कामों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में

ईश्वर की च्यवस्था से परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्व-तन्त्र है ॥

४२—“स्वर्ग” नाम सुख विशेष भोग और उस की सामग्री की प्राप्ति का है ॥

४३—“नरक” जो दुःख-विशेष-भोग और उस की सामग्री की प्राप्ति होना है ॥

४४—“जन्म” जो शरीर धारण कर प्रगट होना सो पूर्व पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूँ ॥

४५—शरीर के संयोग का नाम “जन्म” और वियोगमात्र को “मृत्यु” कहते हैं ॥

४६—“विवाह” जो नियम पूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा करके पाणिग्रहण करना वह “विवाह” कहाता है ॥

४७—“नियोग” विवाह के पश्चात् पति के भरजाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा आपत्काल में पुरुष स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना ॥

४८—“स्तुति” गुणकीर्त्तन श्रवण और ज्ञान होना इस का फल प्रीति आदि होते हैं ॥

४९—“प्रार्थना” अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उन के लिये ईश्वर से याचना करना और इस का फल निरभिमान आदि होता है ॥

५०—“उपासना” जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र है वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय-योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है इस का फल ज्ञान की उन्नति आदि है ॥

५१—“सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना” जो २ गुण परमेश्वर में हैं उन से युक्त और जो २ गुण नहीं हैं उन से पृथक् मान कर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुण स्तुति, शुभ गुणों के ग्रहण की इच्छा और दोष छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना सगुणनिर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मान कर अपने आत्मा को उस के और उस की आज्ञा के अर्पण कर देना सगुणनिर्गुणोपासना कहाती है ॥

ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं इन की विशेष व्याख्या इसी “सत्यार्थ-प्रकाश” के प्रकरण २ में है तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है अर्थात् जो २ बातें सब के सामने माननीय है उस को मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सब के सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूँ और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध भगड़े हैं उन को मैं प्रसन्न नहीं करता क्योंकि इन्हीं मतवालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फैसा के परस्पर शत्रु बना दिये है । इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर सब को ऐक्यमत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीति युक्त करा के सब से सब को सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है । सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा सहाय और आसजनों की सहानुभूति से “यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त होजावे ” जिस से सब लोग सहज से धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है ।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वय्येषु ॥

ओम् शत्रो मित्रः शं वरुणः । शत्रो भवत्वय्यमा ॥
 शत्र इन्द्रो बृहस्पतिः । शत्रो विष्णुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्म-
 णो । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव
 प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । क्रतुमवादिषम् । सत्यमवादिषम् ।
 तन्मासावीत् । तदुक्तारमावीत् । आवीन्माम् । आवी-
 द्दुक्तारम् । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां
 श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमह-
 यानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितः स्वमन्तव्या-
 मन्तव्यसिद्धान्तसमन्वितः सुप्रमाणयुक्तः सु-
 भाषाविभूषितः सत्यार्थप्रकाशोऽयं
 ग्रन्थः संपूर्तिमगमत् ॥

वैदिक पुस्तकालय अजमेर के पुस्तका का सूचीपत्र ।

बड़ा सूचीपत्र मैगवा के कमीशन आदि के नियम देखले, जो मुफ्त मिलता है ।

ऋग्वेदभाष्य सम्पूर्ण	३६)	
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण	१६)	
	मू०	डा०
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका		
बिना जिल्द की	१।)	=)
ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका		
केवल संस्कृत	III)	=)
जिल्द की	१III)	=)II
वेदविरुद्धमतखण्डन	=)	II
विवाह पद्धति	I)	II
वेदान्तिध्वान्तिनिवारणअंग्रेजी	-)	II
वेदान्तिध्वान्तिनिवारण हिन्दी	III)	II
मैलाचांदापुर (हिन्दी)	-)	II
मैलाचांदापुर (उर्दू)	-)	II
चरणोच्चारणशिक्षा	III)	II
सन्धिषय	I-)	II
नामिक	I)	II
कारकीय	=)	II
सामासिक	I)	II
स्वैयताद्धित	II=)	-)
अव्ययार्थ	-)II	II
सौवर	-)II	II
आख्यातिक	१I)	=)
पारिभाषिक	=)	II
धातुपाठ	I)	III
गणपाठ	=)	II
उणादिकोष	II)	-)
निघण्टु	I)	II
अष्टाध्यायी मूल	=)II	III
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)	II
हवनमन्त्र	-)	II
सत्यार्थप्रकाश (हिन्दी) साद्री	१II)	I)II
" " (हिन्दी) बड़िया	२)	I-)
सत्यार्थप्रकाश (बंगला)	१)	=)II

	मू०	डा०
सत्यार्थप्रकाश (गुजराती)	१)	I)
छान्दोग्योपनिषद्भाष्य	३)	I=)
दशोपनिषद् मूल (गुटका)	II=)	-)
शतपथ ब्राह्मण सम्पूर्ण	४)	I)II
व्यवहारभानु	=)	II
अमोच्छेदन	III)	II
अनुअमोच्छेदन	III)	II
आन्तिनिवारण	-)	II
आर्योद्देश्यरत्नमाला	I)	II
" " (मरहठी)	-)	II
" " (अंग्रेजी)	III)	I)II
गोकरुणानिधि	-)	III
स्वामीनारायणमतखण्डन		
संस्कृत आर्यभाषासहित	-)II	-)II
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	-)II	-)II
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश अंग्रेजी	I)	-)II
शास्त्रार्थ फीरोजाबाद	-)II	-)II
शास्त्रार्थकाशी	II)	III
आर्याभिविनय (गुटका)	=)	II
" जिल्द की	I-)	-)
" मोटे अक्षरों में	I=)	=)
पञ्चमहायज्ञविधि	-)II	-)II
" जिल्द की	=)II	-)
" बड़िया	=)	-)
आर्यसमाज के नियमोपनियम	I)	-)I
संस्कारविधि	II)	-)I
" बड़िया	II=)	=)
यजुर्वेद भाषाभाष्य	२)	I=)
शतपथपहलाकांड	I)	-)
निरुक्त	II=)	-)I
स्वीकारपत्र	I)	II
आर्यसमाज के नियम हिन्दी	=)	सैकड़
" " " " रंगविरंगी		
स्याही तथा मुनहरी अक्षर	२)	

